दलित चेतना और इसकी दार्शनिक निष्पत्तियां

- डॉ० रविन्द्र गासो

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में दलित–साहित्यांदोलन के दार्शनिक/वैचारिक आधारों के लिए मराठी दलित साहित्य चिन्तन ने बहुत कुछ तय कर दिया था। 1966 ई० में अमेरिका में नीग्रो युवकों ने 'ब्लैक पैन्थर' नाम लड़ाकू संगठन बनाया और एक बड़ा गरम–पंथी आंदोलन खड़ा किया। दलित युवकों ने 09 जुलाई 1972 ई० को 'दलित पैन्थर' नाम संगठन की स्थापना की थी। इस संगठन से सक्रिय सदस्यों को मराठी दलित–साहित्य की जो वैचारिक आयाम और नए तेवर दिए, उनसे हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं का दलित साहित्य आज भी ऊर्जा ले रहा है। लेकिन दलित–दार्शनिकता का आधार भारतीय नवजागरण है। यहीं से इसका क्रमिक विकास हुआ।

पुनर्जागरण की निश्पत्तियों में दलित–चेतना प्रमुख है। तर्क, विवेक और आलोचना की व्यापक जमीन पर तथा बुद्धिवाद की धुरी पर नवजागरण ने भारतीय समाज और संस्कृति का पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत किया। लेकिन ज्यादातर समाज–सुधारकों, चिंतकों, नेताओं ने स्त्री–विशयक समस्याओं को प्रमुखता दी। सती–प्रथा तथा बाल विवाह रोकने, विधवा विवाह शुरू करवाने तथा अनमेल विवाह–विरोध के माध्यम से 'परिवार में जनतंत्र' की प्रक्रिया आरम्भ की गई। प्रमुखतः यह मध्यवर्गीय चरित्र का आन्दोलन था। स्त्री–विशयक उपर्युक्त समस्याओं के साथ–साथ अस्पृश्यों की मुक्ति का ज्यादा मूलगामी चरित्र का आन्दोलन महाराश्ट्र में ज्योतिबा फुले द्वारा चलाया गया, जिसे डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने राजनीतिक ऊँचाई तक पहुंचाया। अम्बेडकर ने ही 'दलित प्रश्न' को 'स्वाधीनता' तथा 'स्वराज्य' का प्रमुख केन्द्र बनाने का संघर्श किया। दलित–चेतना का दार्शनिक आधार फुले–अम्बेडकर चिन्तन ही है। दोनों महान् सुधारकों–चिन्तकों ने दलित–मुक्ति–संघर्श में चिन्तन की जिस धारा से अस्पृश्यों–श्रमिकों की गुलामी का स्थायी तथा मूलगामी समाधान देखा, वह थी – भौतिकवादी दर्शन की चिन्तन–धारा। ब्राह्मणवादी वर्चस्व को तोड़ने तथा तमाम स्तरों पर दलितों के अपवर्जन को समाप्त करने के लिए वैकल्पिक दर्शन तथा इतिहास दृश्टि की खोज व स्थापना की गई। 'वेद, पुराण, महाभारत, गीता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, रामायण, रामचरितमानस, कुमारिल भट्ट का श्लोककार्तिक, तेजवार्तिक तथा शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र भाश्य आदि तमाम ऐसा साहित्य जिसमें दलितों के मानव होने को, उनकी मानवीय अस्मिता को नकारा गया हो अथवा वर्ण–व्यवस्था का पोशण किया गया हो – को नकारने वाला चिन्तन ही दलित–चेतना का आधार हो सकता

है' – ऐसा दलित–मुक्ति आंदोलन के नेताओं का मत है। ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, स्वर्ग–नरक, भाग्यवाद, रूढ़ियों को सिरे से खारिज करना दलित–दर्शन का प्रस्थान बिन्दु है। वैज्ञानिक चिन्तन, बुद्धिवाद, तर्क, लौकिकता, परिवर्तनकामी विचार, मानव तथा समाज को आधार मानकर 'समता, स्वतन्त्रता, न्याय तथा भ्रातृत्व' पर आधारित नये समाज की परिकल्पना दलित–दर्शन का आधार है। लोकायत/चार्वाक्–दर्शन, बौद्ध–दर्शन, दलित संतों की जाति–पाति विरोधी धारा, फुले–अम्बेडकर– दर्शन, दक्षिण भारत के पेरियार, केरल के नारायण गुरु, बंगाल के चांद गुरु, उत्तर भारत के स्वामी अछूतानंद आदि दलित मुक्ति आंदोलन के प्रवर्त्तकों का कार्य व चिन्तन, 1972 में महाराश्ट्र में 'दलित पैन्थर' का उग्र आंदोलनात्मक चिन्तन, अमेरिका के नीग्रो गुलामों का आंदोलन तथा साहित्य दलित चेतना के दार्शनिक आधारों में गिने जाते हैं।

दलित चिन्तक–लेखक जयप्रकाश कर्दम ने दलित–साहित्य के वैचारिक आधारों तथा प्रेरणा स्रोतों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया है

"– अम्बेडकर का समग्र चिन्तन

– बौद्ध धर्म व दर्शन तथा बौद्ध धर्म ग्रहण करते हुए अम्बेडकर की बाईस प्रतिज्ञाएं

– प्रगतिवाद तथा वैज्ञानिकता''1

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है –

''दलित–जाति में पैदा होकर ही कोई दलित–लेखक नहीं हो जाता है। दलित लेखक के लिए आवश्यक है, डॉ॰ अम्बेडकर और फुले के जीवन–दर्शन को समझना और दलित–चेतना की अस्मिता के अनुरूप एक सोच और दृश्टिकोण का विकास। केवल जन्म के आधार पर किसी की भी पहचान स्थापित करना ब्राह्मणवादी सोच है।''2

आधुनिक काल में दलित–मुक्ति आंदोलन से निःसृत यह 'दलित अस्मिता' ही दलित–चेतना का मूल है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मध्यकालीन भक्ति साहित्य में दलित जातियों से आए संत कवियों ने केवल सामाजिक और धार्मिक आधार पर समानता पर बल दिया, स्थायी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना नहीं खड़ी की, जिसके आधार पर सामाजिक–धार्मिक समानता को विकसित तथा स्थायी रूप दिया जा सकता। आधुनिक काल के आरम्भ में हिन्दू समाज से पृथक् अस्मिता की विचारधाराएं दिखाई देने लगीं। इस दौरान दलितों ने अपने–आपको आर्यों से भिन्न बताया और कहा कि इन आर्यों ने हम मूल निवासियों के समतामूलक समाज को छिन्न–भिन्न कर दिया था। इस कालखण्ड में दलितों

ने आदि–हिन्दू, आदि–द्राविड, आदि–आन्ध्र, आदि–धर्मी, मूल–निवासी जैसी अस्मिताओं का सृजन किया। परन्तु डॉ० अम्बेडकर ने आर्य एवं दलितों में प्रजाति के आधार पर भिन्नता स्वीकार नहीं की।

डॉ० विवेककुमार का मानना है कि ''दलितों की भारतीय समाज के संरचनात्मक ढांचे में वंचना की स्थिति है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वंचनाओं के आधार पर ही दलितों की चेतना का विकास हुआ जो कि सवर्णों की चेतना से भिन्न है।''3

दलित–अस्मिता सवर्णों द्वारा पूर्व में स्थापित उनकी अस्मिताओं को भी सिरे से नकारती है। समूल परिवर्तन की इस क्रान्ति–चेतना के बारे में डॉ० विवेक कुमार स्पश्ट करते हैं – ''दलित–अस्मिता के सृजन में जहां जन्मता लांछन एवं अपवर्जन के खिलाफ संघर्श है, वहीं सामाजिक एवं धार्मिक आधार पर पूर्व में स्थापित अस्मिताओं को खण्डित करने का भी प्रयास है।''4

दलित–लेखन में भी 'दलित–अस्तित्व का संघर्श' बार–बार सर्वत्र दिखाई देता है, खास तौर पर दलित आत्म–कथाओं में। ''जितने भी दलित रचनाकारों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं, उन सब के सामने पेट दूसरा पहलू है, पहला पहलू अपना अस्तित्व है। वे मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और भावनात्मक रूप से अस्तित्व से जूझते हुए दिखाई देते हैं।''5

दलित–अस्तित्व और अस्मिता यथार्थ जीवन में असंगतियों से जूझती है तो नकार, विरोध तथा विद्रोह की स्थिति बनती है। अपवर्जन के खिलाफ परम्परा नकार, सामंतवाद (ब्राह्मणवाद) – पूंजीवाद का विरोध भी इसी चेतना के सांस्कृतिक राजनीतिक पक्ष हैं। अम्बेडकर–दर्शन ने दलित–चेतना को 'शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा संघर्श करो' का मन्त्र देकर 'ट्रेजडी के उन्मूलन' का सपना दिया, नवीन कल्पनाएँ, नई गति तथा नए ख्याल दिये। 'समता, स्वतन्त्रता, बंधुत्व' का नारा देकर सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन को सकारात्मक सरोकार प्रदान किए। प्रामाणिक–प्रखर अभिव्यक्ति के लिए अनुभूति के औजार तथा समग्रता का दृश्टिकोण दिया। नए मानव मूल्यों और जाति–विहीन समाज का सपना दिया। समाजवाद तथा लोकतन्त्र का आर्थिक–राजनीतिक आधार दिया। बुद्ध, फूले, अम्बेडकर, पेरियार, नारायण गुरु आदि के समृद्ध विचार–दर्शन से दबे–चिथे लोगों में जिस सोच का निर्माण हुआ, उसे दलित–चेतना का उभार ही कहना तर्कसंगत होगा। ईश्वर, भाग्य, कर्मफल, पुनर्जन्म, भाग्यवाद, अंधविश्वासों, रूढ़ियों का बोझ दलित–चेतना के विकास को अवरुद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि सर्वप्रथम इन्हें ही त्याज्य घोशित किया गया। हिन्दू धार्मिक पुस्तकों की वैधता पर दलित–

चेतना प्रश्नचिह्न लगाती है। दलित की इसी चेतना को 'जातीय चेतना' भी कहा जा सकता है। वंचित जातियों के उत्थान तथा जाति–व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के लिए 'जाति' के भारतीय राजनीति में प्रयोग को दलित–लेखक 'जाति–चेतना का राजनीतिकरण' कहकर परिभाशित करते हैं। वर्तमान में दलित–चिन्तकों की नवीन उद्भावनाएं दलित–चेतना का विस्तार बिंदु हैं। अपने लिखित–अलिखित इतिहास, समृद्ध–परम्परा को दलित चेतना का यह नया उभार लिपिबद्ध करने तथा परिभाशित करने में लगा है।

अब तक लिखित ज्ञान की परम्परा न होने के कारण दलितों में स्वयं का ज्ञान, विज्ञान, तकनीक, कला, कल्पना, आविश्कारों, अन्वेशणों का अपार भण्डार होते हुए भी अपना कहने के लिए कुछ नहीं था। लेकिन यह चेतना न केवल अपने इतिहास को लिखने में लगी है या कहें इतिहास की दलित दृश्टिकोण से व्याख्या में लगी है बल्कि सवाल करती है कि जिन लोगों (द्विजों) ने अपने हाथों से अन्न पैदा नहीं किया, किसी वस्तु को अपने श्रम से पैदा नहीं किया, उनके दर्शन व लेखन में यथार्थ– बोध कैसे हो सकता है? यथार्थ–बोध तथा नवीन मूल्य 'दलित चेतना' का विशिश्ट अवदान है।

मेहनतकश जातियों की इस चेतना के बारे में प्रो॰ शरच्चंद्र मुक्तिबोध का कहना है – ''बाह्य तथा अंतरंग जीवन की असंगति की प्रतीति दलित लेखकों की चेतना जगा देती है। यह चेतना मूल्य–गर्भा एवं प्रामाणिक है। ... यह चेतना प्रगतिशीलता का विरोध नहीं करती, बल्कि उसका ही एक स्वतंत्र उन्मेश बन जाती है।'6'

नई स्थितियों में 'दलित–चेतना' अपने को अद्यतन करने में लगी है। 'दलितीकरण' की सांस्कृतिक अवधारणा की प्रतिश्ठा अब इसका लक्ष्य है। इसके अनुसार 'दलित' अपने अस्तित्व का एक नया दर्शन रूपायित कर रहा है। ऐसा प्रस्तावित करने वालों का विचार है कि लोक–साहित्य एवं कला का दलित–दृश्टिकोण से विश्लेशण करने पर यह बात स्पश्ट हो जायेगी।

''कांचा एलैय्या ने इस दर्शन के चार आयामों की ओर संकेत दिया है – 1. श्रम के बल पर जीना, 2. मानव और प्रकृति के बीच संघर्श में से दर्शन को रूपायित करना, 3. उत्पादन का समान हिस्सों में उपभोग, 4. मानवीय सम्बन्धों में भाशा, भाव और आचरण में समानता। एलैय्या जी की दृश्टि भूमि, प्रकृति, श्रम–शक्ति, उत्पादन, समानता आदि मूलभूत तत्त्वों पर आधारित है।''7

इस तरह वर्तमान दौर में दलित–चेतना का उभार मानवीय गरिमा, ऊर्जा तथा अधिकार–प्राप्ति के लिए संघर्श के रूप में हुआ है।

सन्दर्भ :–

1. जय प्रकाश कर्दम; 'परम्परागत हिन्दी साहित्य और दलित चेतना'; राष्ट्रीय सहारा (हस्तक्षेप परिशिष्ट); 18 जनवरी 1997
2. श्यौराज सिंह बेचैन, रजतरानी मीनू सं°; दलित दखल (साहित्यिक साक्षात्कार); 2001; श्री साहित्यिक संस्थान, गाजियाबाद; पृ° 27
3. डॉ° विवेक कुमार; अम्बेडकरवादी लेखन का समाज शास्त्र; अपेक्षा (पत्रिका) : सं° तेज सिंह;जुलाई–सितम्बर 2004, पृ° 21
4. उपर्युक्त; पृ° 17
5. हेमलता महीश्वर; 'हिन्दी दलित कथा साहित्य की सामाजिकता'; 'दलित साहित्य' (वार्शिकी) 2005; सं° जय प्रकाश कर्दम; दिल्ली; पृ° 67
6. महीप सिंह, चन्द्र कान्त बांदिवडेकर सं°; 'साहित्य और दलित चेतना' द्वितीय संस्करण 2000; अभिव्यंजना, दिल्ली; में शरच्चंद्र मुक्तिबोध का लेख; 'दलित साहित्य : प्रामाणिक चेतना की प्रतीति', पृ° 15
7. डॉ° ए° अच्युतन; केरल का दलित साहित्य : एक विश्लेशण'; 'दलित साहित्य' वार्शिकी 2002; सं° जय प्रकाश कर्दम; दिल्ली; पृ° 88

———————

Email: gassoravinder@gmail.com